तेहतरवां संविधान संशोधन अधिनियम एवं महिलायें

प्रोफेसर शील के. आसोपा

पंचायती राज्य अधिनियम अथवा तेहतरवां संविधान संशोधन अधिनियम (1992) स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाने की दिशा में एक कारगर कदम की तरह देखा जा रहा है। इससे जनशक्ति के सृजन व अभियोजन का और सामान्य जन की सरकार व प्रशासन में भागीदारी बढ़ाने का गांधी जी का सपना साकार होता नजर आ रहा है। महिलाओं के लिये पंचायती व्यवस्था में हर स्तर पर 33 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था करके इस अधिनियम ने एक विलक्षण सामाजिक क्रांति का सूत्रपात किया है जिसके बेहद प्रभावशाली और अद्भुत परिणाम कुछ समय बाद सामने आयेंगे।

चूंकि यह पहला क्रांतिकारी और बेहद महत्वाकांक्षी प्रयास है, इसे लेकर अनेक आशंकाएं भी लोगों के मन में आ रही हैं। खासकर महिलाओं के लिए आरक्षण को लेकर लोग सोचते हैं कि क्या महिलायें इस अवसर का फायदा उठाने में समर्थ होंगी और वे इस दायित्व को वहन कर पायेंगी? लेकिन महिलाओं को सदियों से प्रतीक्षा थी इस अवसर की। वे चाहें कितनी ही अनपढ़ और पिछड़ी हुई क्यों न हों वे इस अधिनियम की क्रियान्विति को सफल बनायेंगी।

73वां संविधान संशोधन अधिनियम

तेहतरवें संविधान संशोधन ने राज्य सरकारों को यह दायित्व सौंपा है कि वे प्रत्येक पांचवे वर्ष पंचायतों के चुनाव करवाएं

और उनमें एक-तिहाई अर्थात् 33 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिये सुरक्षित करें। यह एक तिहाई आरक्षण सामान्य श्रेणी एवं अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों को दिये गये आरक्षण के अंतर्गत भी लागू रहेगा। इस तरह सम्पूर्ण स्थानों का काफी बड़ा हिस्सा महिलाओं को मिल सकेगा बशर्ते कि महिलायें आगे आयें, समाज उन्हें आगे आने दे, परिवार बाधक न बने, पुरुषों का अहम् आड़े न आये और सभी महिला संगठन सक्रिय होकर इस आरक्षण को वास्तविक व प्रभावी बनाने में मदद करें।

यह अधिनियम प्रशासनिक तंत्र को पंचायतों के अधीन लाना चाहता है। साथ ही पंचायतों को पर्याप्त वित्तीय संसाधन प्रदान करना चाहता है जिससे वे अपने क्षेत्राधिकार में विकास योजनाओं को क्रियान्वित कर सकें। ऐसा नहीं है कि इस संविधान संशोधन विधेयक (1992) से पूर्व इस दिशा में प्रयास नहीं किये गये थे। यही सब व्यवस्थायें पहले भी हुई थीं लेकिन इतनी ईमानदारी व मुस्तैदी से नहीं। राज्य सरकारों ने, स्थानीय प्रशासनिक तंत्र, राजनीतिज्ञों व स्थानीय नेताओं ने सारे प्रयास को मात्र औपचारिकता बना कर रख दिया था। सरकारों ने 20 वर्षों तक चुनाव नहीं करवाए। महिलाओं व पिछड़े वर्गों के लिये कोई योजनाएं लागू नहीं की और न ही प्रशासन में उनकी भागीदारी परोक्ष स्तर पर ही स्वीकार की। राज्य सरकारों ने पंचायत राज्य व्यवस्था लागू करने के बाद निगरानी (मॉनिटरिंग) नहीं की। यह देखने का प्रयास ही नहीं किया कि जिस व्यवस्था का उद्घाटन इतने जोर-शोर से देश के प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरु से (राजस्थान में सर्वप्रथम) करवाया गया था उस व्यवस्था का क्या हाल है? यह उदासीनता ही पंचायती राज व्यवस्था की विफलता का बड़ा कारण थी। वर्तमान अधिनियम में राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया ही नहीं गया है कि वे कोई स्वतंत्र रवैया अपना सकें। उन्हें समय पर चुनाव करवाने ही होंगे और उल्लेखित वर्गों को आरक्षण देना ही होगा। आवश्यकतानुसार इन आरक्षित स्थानों में वृद्धि कर सकते हैं पर कटौती करने का अधिकार उन्हें प्राप्त नहीं है। यह बहुत समझ-बूझ वाला प्रावधान है। तेहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम ने एक अद्भुत सामाजिक क्रांति का सूत्रपात किया है जिसने सामाजिक विकास की गति को नई रवानी दी है और अब तक के सभी शोषित वर्गों को अपनी पूरी शक्ति के साथ खड़े हो सकने और राष्ट्रीय विकास की मुख्यधारा के साथ जुड़ने का साहस व अवसर प्रदान किया है।

एक खामोश सामाजिक क्रांति का उद्भव

संसदीय व्यवस्थापन से एक अद्भुत क्रांति का जन्म हुआ है। एकाएक करीब 10 लाख से अधिक महिलाओं को सार्वजनिक क्षेत्र में प्रविष्ट होने और शासन व सत्ता में भागीदारी का अधिकार प्राप्त हुआ है। हमारे देश में पंचायतों की कुल संख्या 2.25 लाख है। यदि प्रत्येक पंचायत में औसतन 10 सदस्य भी हों तो सम्पूर्ण निर्वाचित सदस्यों की संख्या 22.50 लाख होती है। इसका 33 प्रतिशत महिलायें हैं अतः उनकी संख्या पंचायतों में 7.25 लाख है। इसी तरह ब्लाक स्तर पर यदि 5000 इकाइयां हैं और प्रत्येक में औसतन 25 सदस्य हैं तो कुल सदस्य संख्या 1.25 लाख होगी और महिलाओं को 33 प्रतिशत अर्थात् 40,000 से कुछ ज्यादा स्थान मिलेंगे। जिला स्तर पर भी 465 के लगभग इकाइयां होंगी। यदि इनमें से प्रत्येक में 30 सदस्य हैं तो कुल सदस्य संख्या 13950 होगी और 1/3 महिलाओं के आरक्षित स्थानों के अनुसार उन्हें प्राप्त स्थान 4650 के आसपास होंगे। इस तरह तेहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम में लगभग 10 लाख महिलाओं को निर्वाचित हो पाने में सक्षम बनाया है जो कम से कम 1 करोड़ से अधिक महिलाओं का प्रतिनिधित्व तो करती ही होंगी। महिला अध्यक्षों की संख्या में भारी बढ़ोतरी हुई है। उत्तर प्रदेश में अकेले 1988 में महिला अध्यक्षों की संख्या 930 थी अब उनकी संख्या 24600 है अर्थात् 25 गुना अधिक।

राजस्थान में पंचायतों की संख्या 9185 है। यदि यहां भी औसतन 10 सदस्य प्रत्येक पंचायत में माने जाये तो कुल 91850 सदस्य निर्वाचित होंगे। इसके 33 प्रतिशत अर्थात् 30600 स्थान महिलाओं को प्राप्त हुये। ब्लॉक स्तर पर 237 इकाइयां हैं। यदि प्रत्येक में 25 सदस्य माने जायें तो कुल सदस्य संख्या 6000 के आसपास आती है। इसमें से 1/3 के हिसाब से महिलाओं के 2000 स्थान मिलते हैं। जिला स्तर पर 31 इकाइयां हैं और औसतन 30 सदस्यों के हिसाब से 900 सदस्यों में से महिलाओं को 300 स्थान प्राप्त होते हैं। इस तरह 73वें संशोधन अधिनियम के अनुसार महिलाओं को लगभग 35,000 स्थान (अध्यक्षों सहित) मिले होने चाहिएं। केवल कानून की कलम से, व्यवस्थापन विधि के माध्यम से सामाजिक क्रांति का यह जबर्दस्त कदम उठाकर सरकार ने यह साबित किया है कि यदि समाज स्वतः वक्त की आवाज नहीं सुनेगा, सड़ी-गली मान्यताओं के घेरे में घिरा हुआ देश की 50 प्रतिशत आबादी से खिलवाड़ करने से बाज नहीं आयेगा तो कानून उसे इन सब तौर-तरीकों को छोड़कर सीधे रास्ते पर आने और न्यायसंगत सुसंस्कृत, भेदभाव रहित व सभ्य व्यवहार करने को बाध्य कर सकेगा। जाहिर है कि या तो समाज स्वतः बदले, नहीं तो कानून को उसे बदलने की भूमिका निभानी ही पड़ेगी।

चुनौतियां एवं क्षमताएं

अभी भी तेहत्तरवें अधिनियम की व्यवस्थाओं को भारत का पिछड़ा सामाजिक वर्ग स्वीकार नहीं कर पा रहा है। अनेक आशंकाएं उठाई जा रही हैं और अनेक अटकलें लगाई जा रही हैं। लोग हंसते हैं कि जो महिलायें मकान की चौखट से बाहर नहीं निकली, जिन्होंने घूंघट की ओट से दुनिया को देखा है, समझा है, जाना है और कभी भी बगैर किसी निगरानी के समाज में प्रविष्ट नहीं हुई हैं वे निर्वाचित हो भी जायें तो क्या कर लेंगी ? उन्हें समाज के 'समर्थ वर्ग' बेवकूफ बना सकते हैं संसाधनों का दुरुपयोग करवा कर कानून के कटघरे में खड़ा करवा सकते हैं। असामाजिक तत्व उन्हें डरा धमका कर फायदे उठा सकते हैं और हीनता व असमर्थता की मानसिकता के कारण भी वे स्वयं को कमजोर महसूस करेंगी। सभी महिलाओं की यही स्थिति होने के कारण वे निर्वाचित महिला की पक्षधर व सहायक होंगी या समाज के पुरुष वर्ग द्वारा बताये रास्ते का अनुसरण करेंगी ? ये सवाल उठाये जा रहे हैं। यह स्वाभाविक है। पर क्या कभी शुरूआत नहीं होनी चाहिये ? जब आजादी के बाद पहली संसद व विधान सभाएं बनीं तो क्या पुरुषों को सभी कुछ जानकारी थी ? क्या आज भी अशिक्षित पुरुष लोकसभा व विधान सभाओं की सीटों पर बैठे ऊंघते दिखाई नहीं देते ? महिलायें भी, जब उन्हें जिम्मेदारी दी गई है तो सब कुछ सीख जायेंगी और पुरुषों से बेहतर प्रशासक बनकर सामने आयेंगी।

महिलाओं को ईश्वर प्रदत्त कुछ ऐसे गुण मिले हुये हैं कि पुरुष चाहकर भी उनके बराबर नहीं हो सकते। कर्तव्यपरायणता, ईमानदारी, सर्वहित की भावना, मातृत्व भाव तथा कुटिलता, भेदभाव, भ्रष्टाचार व घटियापन से नैसर्गिक घृणा आदि के कारण वह पुरुषों से अधिक बेहतर शासक बन सकती हैं।

गांधी जी ने आजादी की लड़ाई के जमाने में महिलाओं को घर-परिवार की परिधि से बाहर आकर काम करने और देश व समाज की समस्याओं से जुड़ने का आह्वान किया। इसका सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि मताधिकार का अधिकार एवं संविधान में दिये गये स्वतंत्रता व समानता के अधिकार उन्हें स्वतः प्राप्त हो गये। यह अलग बात है कि पिछले 50 वर्षों के दौरान समाज ने महिलाओं को जकड़ कर रखा और इन अधिकारों व अवसरों का पूरी तरह प्रयोग नहीं करने दिया। फिर भी महिलायें साहस करके सांसद, विधायक, पुलिस, फौजी, डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, शिक्षक, वकील, समाज सुधारक सभी कुछ बन जाने में और अच्छे कीर्तिमान स्थापित करने में सफल हो सकीं। सभी स्तरों पर परीक्षा परिणामों की मैरिट पॉजीशन में लड़कियां आगे रहती हैं। बड़े-बड़े उद्योग व व्यवसाय महिलाओं को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि उनसे यह आशा की

जा सकती है कि वे पूरी सामर्थ्य, दृढ़ता तथा ईमानदारी से जो काम दिया जायेगा उसे पूरा करेंगी।

जन आन्दोलनों को ही देखा जाये तो 'चिपको आंदोलन' (पर्यावर्णीय) 'नर्मदा आंदोलन', छतीसगढ़ का 'नियोगी आंदोलन' (असंगठित श्रमिकों के अधिकारों के लिए) के पीछे महिलाओं की सक्रिय भूमिका रही है। वनों के संरक्षण के लिए खेजड़ीग्राम (राजस्थान) की बिश्नोई महिलायें तो एक तरह से पेड़ों की रक्षा के लिए मृत्यु का वरण करके अमर ही हो गईं। इसके अतिरिक्त उत्तरप्रदेश, हिमाचल, कर्नाटक, पश्चिमी घाट आदि क्षेत्रों में महिलाओं ने पर्यावरण संरक्षण व खनन कर्त्ताओं को पीछे हटने व उन योजनाओं का परित्याग करने को बाध्य करने में सफलता पाई है।

मौजूदा परिदृश्य : सामाजिक उपेक्षा का चित्र

महिलायें सम्पूर्ण विश्व जनसंख्या का 50 प्रतिशत भाग है। वे दुनिया के सम्पूर्ण काम के घंटों का 2/3 घंटे काम करती हैं। लेकिन केवल 1/3 काम ही श्रम की श्रेणी में आता है। शेष अपंजीकृत रहता है। सम्पूर्ण विश्व की आय का कुल 1/10 भाग ही उन्हें मिलता है और विश्व की सम्पूर्ण सम्पदा में से सिर्फ 1/10 संसाधनों पर ही उन्हें मिलकियत प्राप्त है।

भारत में महिला जनसंख्या का 49 प्रतिशत है। देश की 75 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण व कृषि प्रधान है फिर भी महिलाओं को 0.5 प्रतिशत भूमि पर ही स्वामित्व प्राप्त है। भारत में पुरुषों की साक्षरता दर 64.13 प्रतिशत है जबकि महिलाओं की सिर्फ 39.29 प्रतिशत है।

वर्ष 1991 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार 23 प्रतिशत महिलायें कार्यरत हैं। (1981 में केवल 19.6 प्रतिशत ही कार्यरत थीं) इनमें से 42 प्रतिशत महिलायें अवैतनिक काम करती हैं। केवल उत्तर पूर्वी राज्यों में कार्यरत महिलाओं का प्रतिशत (53 प्रतिशत) ऊंचा है। मिजोरम में 44 प्रतिशत, अरुणाचल में 40 प्रतिशत, नागालैंड में 39 प्रतिशत तथा मणिपुर में 37.5 प्रतिशत महिलायें सवैतनिक या आय सहित काम कर रही हैं।

दक्षिण भारत के राज्यों में आंध्रप्रदेश में 35 प्रतिशत, तमिलनाडू में 31 प्रतिशत, कर्नाटक में 29 प्रतिशत तथा सर्वाधिक साक्षरता प्राप्त केरल में मात्र 17 प्रतिशत महिलायें नौकरीपेशा हैं। उत्तर भारत के हिमाचल में 33 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 33 प्रतिशत तथा गुजरात व पंजाब व हरियाणा में स्थिति बेहद कमजोर है। पंजाब में 6.8 प्रतिशत तथा हरियाणा में 11.3 प्रतिशत महिलायें ही सवैतनिक काम कर रही हैं। स्थिति देश में इतनी शोचनीय रही है कि महिलायें जानवरों से भी अधिक काम करने को बाध्य की जाती रही हैं। हिमाचल क्षेत्र में एक हैक्टियर भूमि पर एक बैलों की जोड़ी 1064 घंटे प्रतिवर्ष काम करती है। पुरुष 1212 घंटे प्रतिवर्ष काम करते हैं पर महिलायें 3485 घंटे काम करती हैं। गरीबी की रेखा से नीचे के 45 प्रतिशत परिवारों की मुखिया महिलायें हैं और इस तरह गरीबी का भी महिलाकरण हमारी राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था ने कर डाला है।

महिला व पुरुषों में जनसंख्या का अनुपात असंतुलित होता जा रहा है। 1971 में प्रति 1000 पुरुष पर 930 महिलायें थीं। 1991 में प्रति 1000 पुरुषों पर 927 महिलायें हैं। यह स्थिति तब है जब महिला प्रसूति और प्रसूति बाद की देखरेख के साधनों में वृद्धि हुई है और महिला मृत्यु दर में प्रति 1000 पर 9.8 कमी आई है। उनकी आयु सीमा में भी बढ़ोतरी हुई है। 1951 में 31.6 वर्ष से बढ़कर 1990 में यह 58 वर्ष हो गई है। फिर यह अनुपात क्यों असंतुलित हो रहा है? यह प्रश्न अनेक सामाजिक कुरीतियों जैसे दहेज हत्याओं और बालिका व बालिका शिशु हत्याओं की ओर संकेत करता है।

सरकारी आंकड़ों के अनुसार महिलाओं पर अत्याचार एवं उनके प्रति अपराध की घटनाओं में वृद्धि होती जा रही है। ऐसा लगता है कि समाज महिलाओं की घर से बाहर निभायी

जाने वाली भूमिका के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में सख्त हो रहा है और पुरुष प्रधान समाज महिलाओं की बेहतर होती स्थिति को बर्दाश्त नहीं कर पा रहा है। गृहमंत्रालय की अपराध शाखा के अनुसार प्रत्येक 47वें मिनट एक महिला के साथ बलात्कार होता है। प्रत्येक 44 वें मिनट में उसका अपहरण होता है या वह हिंसा की शिकार बनाई जाती है। इसमें पारिवारिक हिंसा, पति द्वारा हिंसा या रिश्तेदारों अथवा बाहरी व्यक्तियों द्वारा हिंसा सम्मिलित है। प्रतिदिन 17 दहेज हत्यायें होती हैं बलात्कार की घटनाओं की संख्या 1974 में 2962 थी। 1993 में यह बढ़कर 11,117 हो गई। अधिकांश अपराध ग्रामीण क्षेत्रों में होते हैं। शहरों में भी इस किस्म की घटनायें बढ़ रही हैं। छोटी बच्चियां तक इससे बची नहीं हैं।

मानव जनित विचार व आन्दोलन जैसे इस्लामी कट्टरतावाद युद्ध, दंगे, आतंकवाद, देश विभाजन आदि में महिलायें सर्वाधिक शोषित होती हैं। प्रकृति जनित घटनाओं जैसे दुर्भिक्ष, सूखा, अतिवृष्टि, बाढ़, महामारी आदि की स्थिति में भी महिलायें ही अधिक सतायी जाती हैं और कई बार तो शरीर व्यापार तक के लिए बाध्य कर दी जाती हैं।

समाज के भीतर बढ़ रही इस सड़ांध और घिनौनेपन से महिलाओं को निजात दिलाने और उनकी आर्थिक स्थिति में बढ़ोतरी करके उन्हें राजनैतिक व सामाजिक क्षेत्रों में कारगर भूमिका निभाने में योग्य बनाने में तेहत्तरवां संविधान विधेयक वरदान बन कर आया है। सरकार ने तो अधिनियम पारित करके अपनी भूमिका निभा दी है। अब इसे सफल बनाने का दायित्व समाज का है। सबसे बड़ा दायित्व स्वयं महिलाओं पर है।

महिला संगठनों की भूमिका

देश में महिला संगठनों की काफी बड़ी संख्या है। उन्नत स्तर के संगठन तो राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय हैं ही, छोटे शहरों, कस्बों, गांवों, ढाणियों में भी छोटे-छोटे संगठनों का प्रादुर्भाव होने लगा है और वे अपने स्तर पर महिलाओं से सम्बन्धित मुद्दे उठाने और उनका हल खोजने में सफलता प्राप्त कर रहे हैं। पर यह सफलता अत्यन्त कम बल्कि लगभग नगण्य स्तर पर ही है।

इसका एक बड़ा कारण विविध संगठनों के बीच सम्पर्क व सम्प्रेषण की कमी है। इनका कोई संघीय ढांचा नहीं है जहां नीति ऊपर से नीचे तक प्रवाहित होकर पहुंच सके और 'ग्रास रूट लेवल' के संगठन अपनी बात ऊपर तक पहुंचा सकें।

पूर्ण रूप से समर्पित संगठनों की कमी है। बहुत से संगठन किसी न किसी खास उद्देश्य को लेकर उठ खड़े होते हैं और उपलब्ध संसाधनों को प्राप्त कर लेने के बाद मात्र किताबी कार्यवाही करते हैं। उनकी सक्रियता विशेष अवसरों पर जैसे महिला दिवस इत्यादि मनाने के मौके पर ही नजर आती है। यदि सर्वेक्षण करके देखा जाए तो अनेक शहरों में ऐसे संगठन मिल सकते हैं।

महिलायें अभी तक पीढ़ियों से चली आ रही 'हीनता' की भावना से और अपने आप को 'नीचा' समझने की आदत से मुक्त नहीं हो पाई हैं। इसलिए कई बार तो वे समस्याओं को, अपनी त्रासदी को दबा देती हैं उसे आगे लाती ही नहीं। कई बार पारिवारिक कारणों और अपने बच्चों के भविष्य को देखकर चुप रह जाती हैं। सामाजिक प्रतिष्ठा और माता-पिता व सास-ससुर की प्रतिष्ठा खोने के डर से भी खामोशी से शोषित होती रहती हैं।

महिला मानसिकता की सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि पारिवारिक हिंसा में महिला ही महिला की दुश्मन होती है। दहेज हत्या, बाल विवाह इत्यादि में भी महिलाओं की भूमिका होती है। अपनी छोटी बच्चियों के साथ अन्याय में जाने-अनजाने 'मां' की भूमिका होती है। चाहे वह किसी दबाव या आर्थिक कारण से हो या घरेलू समस्याओं के कारण हो। सबसे पहले इस मानसिकता का सुधार होना जरूरी है। इसके बगैर हर प्रयास अधूरा रहेगा।

सक्षमता कैसे कारगर हो?

कानून द्वारा सक्षमता के लिये खोला गया द्वार कैसे वास्तविक सफलता का मार्ग दिखाये यह सबसे अहम् सवाल है। पंचायतों में 33 प्रतिशत आरक्षण महिलाओं को मिल गया है। धीरे-धीरे नौकरियों में संसद व विधान सभाओं में भी मिल जायेगा। शिक्षण संस्थाओं में अभी भी छात्राओं की संख्या अधिक होती है लेकिन आरक्षण के बाद 33 प्रतिशत संख्या होना आवश्यक सा हो जायेगा। लेकिन आंकड़े जैसा दर्शाते हैं प्राथमिक शालाओं में लड़कियों की संख्या काफी होती है लेकिन चौथी-पांचवीं कक्षा तक पहुंचते-पहुंचते अर्थात् 11-12 वर्ष की आयु आते ही उनकी संख्या कम होने लगती है। वे घरेलू काम में जुट जाती हैं। खेत-खलिहान में काम करती हैं या विवाह हो जाता है। इस स्कूल छोड़ने की प्रवृत्ति को रोकना आवश्यक है। कम से कम 12वीं कक्षा तक अच्छी पढ़ाई जरूरी बनानी चाहिये और साथ ही उन्हें स्वयं के उद्योग लगाने और आय कमाने योग्य बनाने पर भी जोर दिया जाना चाहिये।

महिला शिक्षा राष्ट्रीय विकास की कुंजी है। महिलाओं को शिक्षित करने से स्वास्थ्य, पौष्टिक भोजन, बीमारियों की रोकथाम इत्यादि पर किये जाने वाले खर्च में कमी आयेगी क्योंकि शिक्षित महिला स्वास्थ्य, स्वच्छता व अच्छे पोषण का ख्याल रखने में सक्षम होगी।

अब तो यह शोध विश्व विदित हो चुका है कि उन्नत मस्तिष्क जो कि शिक्षा से सम्भव है संतानोत्पत्ति की सम्भावनाओं को कम करता है। शिक्षित महिला की 'फरटिलिटी' दर अपेक्षाकृत कम होती है। इससे जनसंख्या की स्वतः रोकथाम हो सकती है यदि महिलाओं की शिक्षा पर जोर दिया जाये। सरकार काफी खर्च कर रही है महिला शिक्षा पर लेकिन समाज इस सुविधा का प्रयोग अपनी रूढ़िवादिता व कट्टरपन के कारण नहीं कर पा रहा है। सम्भवतः कानूनन स्कूली शिक्षा की अनिवार्यता से कुछ फायदा हो सके।

महिला सक्षमता जितनी भी बढ़ी है उसे बरकरार रखने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें प्रौद्योगिकी व विज्ञान की शिक्षा दी जाये। आज का जमाना 'टैक्नॉलॉजी' का है। कम्प्यूटर शिक्षा के बिना इन क्षेत्रों में ज्ञान प्राप्त करना मुश्किल है। सरकार को महिलाओं को कम्प्यूटर शिक्षा उपलब्ध कराने के लिऐ सेन्टर खोलने चाहिये ताकि वे कम खर्च में यह शिक्षा प्राप्त कर सकें। आर्थिक सक्षमता की शुरूआत के तौर पर 'महिला समृद्धि योजना' प्रारम्भ की गई है तथा 'महिला कोष' स्थापित किये हैं जहां से महिलायें स्व-उद्योग के लिए ऋण ले सकती हैं। ऐसी संस्थाओं में वृद्धि होनी चाहिये। ऋण की राशि बढ़ाने से शिक्षित महिलायें उन्नत उद्योगों के क्षेत्र में भी प्रविष्ट हो सकती हैं।

सबसे बड़ी बात जो अब महिलाओं को समझ में आने लगी है वह यह है कि राजनीति में सक्षम बने बगैर वे अपने अधिकारों को सुरक्षित नहीं कर पायेंगी। अभी तक वे विविध दलों के टिकट पर अधिकांशतः मात्र 'डमी' की तरह भूमिका निर्वाह करने के लिए चुनी जाती रही हैं। यह आरोप नहीं है बल्कि वास्तविकता की ओर संकेत है क्योंकि यदि वे सही मायने में सक्षम होतीं तो महिलाओं की सक्षमता बढ़ाने के लिए 73वें अधिनियम जैसे कई कानून पहले से ही लाये जा सकते थे। तृतीय विश्व के अनेक देशों में महिला संगठन अपना 'डिमांड चार्टर' राजनैतिक दलों के समक्ष चुनाव से पूर्व रखते हैं फिर उनके 'चुनाव घोषणा पत्रों का' अध्ययन करके तुलनात्मक दृष्टि से देखते हैं कि कौन-सा दल सर्वाधिक अधिकार व सुविधायें देने के पक्ष में है। इसी के बाद वे राजनैतिक दलों के प्रति अपना रवैया निर्धारित करते हैं। हमारे देश में खुशकिस्मती से मतदान का अधिकार तो महिलाओं को पुरुषों के साथ ही प्राप्त हो गया। संविधान द्वारा उनके बुनियादी अधिकारों, स्वतंत्रता, समानता, शोषण के विरुद्ध संरक्षण, शिक्षा व संस्कृति के अधिकार इत्यादि को भी सुरक्षित किया गया है। फिर भी महिलाओं की घटती संख्या, बालिका शिशु के विरुद्ध अपराध, महिलाओं के प्रति हिंसा व अपराध, शिक्षा का इतना कम स्तर

इत्यादि बताते हैं कि अधिकार देने के बाद सरकारों ने कभी यह मॉनिटर नहीं किया कि उनको वास्तव में प्रयुक्त किया जा रहा है अथवा नहीं। राजनैतिक सक्षमता के बगैर इन अधिकारों का पूरा लाभ महिलाओं को मिल भी नहीं पायेगा। इन्दिरा गांधी, बेनजीर भुट्टो, खालिदा जिया और अब बेगम शेख हसीना जैसी महिला शासनाध्यक्षों के बावजूद दक्षिण एशिया में महिलाओं की शोचनीय स्थिति बताती है कि महिलाओं के पास शक्ति होते हुए भी वे 'शक्तिहीन' बनी रही हैं। राजीव गांधी ने महिलाओं को 30 प्रतिशत आरक्षण की बात की थी उसके बाद जो भी विधानसभा व संसदीय चुनाव हुए उनमें महिलाओं ने इस बात पर जोर ही नहीं दिया कि 30 प्रतिशत महिलाओं को टिकट दिया जाये। प्रत्येक पार्टी का यह कर्तव्य है पर वे उसकी पालना करें तब न।

1996 के चुनावों के थोड़ा पहले महिला संगठन इस दिशा में सक्रिय हुए भी लेकिन एकदम सब कुछ होना सम्भव नहीं होता इसलिए वे इस अवसर का लाभ नहीं उठा पाये। महिलाओं के नाम पर जिन महिलाओं को टिकट (टिकट से वंचित पुरुष नेताओं की पत्नियों व पुत्रियों को) दिये गये हैं उनका भी महिला संगठनों को विरोध करना चाहिये क्योंकि ये महिलायें किसी भी माने में देश की महिलाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करती हैं और न ही ये उनकी समस्याओं से परिचित हैं। ये केवल अपने पतियों या पिताओं की सीट सुरक्षित रखने के लिये चुनाव में खड़ी हुई हैं। जागरुकता के अभाव में महिला आरक्षण के इस तरह दुरुपयोग होने की सम्भावना बराबर बनी रहेगी। महिलाओं को अधिकार व समानता का स्तर देने के भारी-भरकम दावों के बावजूद उन्हें सत्ता से दूर रखा जाता रहा है। पिछले 45 वर्षों में कभी भी 10 प्रतिशत सीटें भी उन्हें संसद व विधानसभाओं में नहीं मिल पाई। कांग्रेस देश की सर्वाधिक पुरानी व प्रतिष्ठित पार्टी है उसने फिर भी अपेक्षाकृत अधिक महिलाओं को टिकट दिया और संसद व विधानसभाओं में पहुंचाया लेकिन भाजपा, जनता दल, कम्युनिस्ट पार्टी इत्यादि अपनी उदारता के दावों के बावजूद इस दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठा पायें हालांकि पार्टी स्तर पर महिला सदस्य संख्या इनमें काफी रही है।

निम्न सारणी से स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

लोकसभा में महिला सदस्य संख्या

वर्ष	कुल सीटें	महिला सदस्य	प्रतिशत
1951-57	499	22	4.4
1957-62	500	27	5.4
1962-67	503	34	6.7
1967-71	523	31	5.9
1979-80	521	22	4.2
1980-89	544	28	5.1
1984-90	544	44	8.1
1990-91	529	28	5.2
1991-96	509	39	7.7
1996	540	39	7.2

स्रोत लोकसभा डेस्क

संयुक्त मोर्चा सरकार अपने चुनावी वादों के अनुसार संसद व विधानसभाओं में महिलाओं को 30 प्रतिशत सीटें देने के लिए आरक्षण विधेयक ला रही है। यह एक स्वागत योग्य कदम है जो सही माने में महिला सक्षमता को बढ़ायेगा। महिलायें स्वयं के हित में व्यवस्थापन करवा सकेंगी और सामाजिक कुरीतियों का शमन करने में सफल हो सकेंगी। जो अधिकार अभी तक नहीं मिले थे, अब मिल रहे हैं तथा और भी अधिक मिलने जा रहे हैं लेकिन इनका उचित उपयोग करने और 73वें विधेयक द्वारा जिस क्रांति का सूत्रपात किया गया है उसे सफलता की दिशा में ले जाने के लिये स्वयं महिलाओं को अपनी रूढ़िवादी व पिछड़ी हुई मानसिकता से उबर कर सामूहिक हितों के संरक्षण व संवर्धन के लिए एकजुट होकर काम करना होगा।